

जय कुमार

बनाम

स्टेट ऑफ मध्यप्रदेश

11 मई, 1999

[डॉ. ए.एस. आनन्द मुख्य न्यायाधीश, एम. श्रीनिवासन और

उमेश सी. बनर्जी, जे.जे.]

भारतीय दंड संहिता, 1860-धारा 302 सपठित धारा 201- अपीलकर्ता ने अपनी 30 वर्षीय गर्भवती भाभी की हत्या की-जब उसने उसे बलात्कार करने का प्रयास किया और पीडिता ने प्रतिरोध किया, तो उसने उसका सिर शरीर से अलग कर दिया-इसके बाद उसके सिर को एक शाखा पर बालों से बांधकर लटका दिया और शरीर को पेड़ के तने पर रखा-अपीलकर्ता ने अपनी 8 वर्षीय भतीजी की भी हत्या की, जो उसकी माँ की भयानक हत्या की गवाह थी-मुल्जिम की माँ ने इलाके में मुल्जिम के बुरे चरित्र और प्रतिष्ठा के बारे में साक्षात्कार दिया-सत्र न्यायाधीश द्वारा मृत्युदंड की सजा और उच्च न्यायालय की डिवीजन पीठ द्वारा पुष्टि की गई-उक्त फैसला के खिलाफ-निर्धारित, तथ्यों ने मुल्जिम की निर्दयता और आपराधिकता को संदेह से परे स्थापित किया-हत्या निर्मम और निर्दयी थी बिना किसी उकसावे के-आरोपी की उम्र 22 वर्ष होने यह कहा नहीं जा सकता है कि

उसकी सजा में कोई दया दिखायी जावे-दुर्लभतम मामलों में से एक जिसमें कोई उदारणीय या घटक परिस्थितियाँ नहीं हैं-दोषसिद्धि और सजा बरकरार रखी गई-आपराधिक प्रक्रिया संहिता, 1973-धारा 354(3)।

आपराधिक प्रक्रिया संहिता, 1973--धारा 235(2)-दंड के प्रश्न पर एक आरोपी की सुनवाई की आवश्यकता-इसका पालन-दोनों पक्षों ने सुनवाई की और कोई भी पक्ष दंड के संबंध में कोई दस्तावेजी या मौखिक साक्षात्कार देना नहीं चाहता था-रक्षा वकील ने केवल दो तथ्यों की याचिका की थी कि दंड के लिए विचार किया जाए विशेष रूप से इस बिन्दू पर कि आरोपी की उम्र 22 वर्ष है और उसका कोई अन्य पिछला आपराधिक रिकॉर्ड भी नहीं है, जिनमें से दोनों को सत्र न्यायाधीश ने ध्यान में रखा था-निर्धारित, धारा 235(2) की अनुपालन में कोई त्रुटि नहीं है।

7 जनवरी, 1997 की रात, अपीलकर्ता ने और, उसकी 8 वर्षीय भतीजी और अपनी भाभी डी की हत्या कर दी, जिसकी उम्र 30 वर्ष थी और वह उस समय गर्भावस्था के उन्नत चरण में थीं। उसने पहले अपनी माँ के कमरे के दरवाजे को बाहर से बंद किया और इसके बाद कमरे में प्रवेश करने के लिए दीवार से कुछ ईंटें हटा दीं, जहाँ डी और और सो रही थीं। अपीलकर्ता ने डी का बलात्कार करने का प्रयास किया और जब उसे प्रतिरोध का सामना करना पडा उसने एक "कुल्हाड़ी" से उसके सिर को उसके शरीर से अलग कर दिया। अपीलकर्ता ने फिर और को पकड़ लिया, जो उसकी माँ की भयानक हत्या की गवाह थी, एक जंगल में ले जाकर

कुल्हाड़ी से मारकर उसे रेत में दबा दिया और पत्थरों से ढक दिया। अपीलकर्ता इसके बाद अपने घर वापस आया और डी के शरीर को कपड़े में बांधकर जंगल ले जाकर सिर को एक शाखा पर बालों से बांधकर लटका दिया और शरीर को एक पेड़ के तने पर रख दिया।

सेशन न्यायाधीश ने अपीलकर्ता को मृत्युदंड दिया, जिसे उच्च न्यायालय की डिवीजन पीठ ने पुष्टि की। इसलिए यह अपील की गयी।

अपीलकर्ता की ओर से तर्क किया गया कि अभियुक्त को दी गयी सजा न्याय की मौलिक अवधारणा के विपरीत चली गई थी और यह कि आपराधिक प्रक्रिया संहिता की धारा 235(2) और 354(3) का पालन नहीं किया गया था। यह आगे कहा गया कि अपराधी को सजा के प्रश्न पर सुनवाई करने के लिए एक प्रभावी और महत्वपूर्ण अवसर देने की कानूनी आवश्यकता का उल्लंघन हुआ था। यह भी कहा गया कि उचित सजा तय करने में न्यायालय को अपराधी की शिक्षा, घरेलू जीवन, सामाजिक समायोजन, और भावनात्मक और मानसिक स्थितियों को ध्यान में रखना होता है।

इस अपील को खारिज करते हुए, अदालत ने यह कहा:

अभिनिर्धारित: 1.1. मामले के तथ्य मुल्लिजम की निर्दयता और आपराधिकता को संदेह से परे स्थापित करते हैं। अपराध की बर्बर प्रकृति ने न्यायिक अंतरात्मा को हिला दिया है। बिना किसी उकसावे के यह हत्या

नृशंस और निर्दयी थी। यह निस्संदेह दुर्लभतम मामलों में से एक बनाता है जिसमें दोषसिद्धि और सजा में हस्तक्षेप करने के लिए कोई उदारणीय या घटक परिस्थितियाँ नहीं हैं। (1441-C-D-G)

1.2. विचाराधीन मामले में कोई घटक परिस्थितियाँ या कोई संतुलन बनाने वाला कारक नहीं है जो संतुलन बना सके। इसके विपरीत, गंभीर परिस्थितियाँ प्रचुर मात्रा में हैं जो सत्र न्यायाधीश के निष्कर्ष का समर्थन करती हैं, जिसकी उच्च न्यायालय ने पुष्टि की है। विचाराधीन मामले के तथ्यों के मैट्रिक्स में आरोपी की उम्र 22 वर्ष होना, उसकी सजा कम करने हेतु पर्याप्त नहीं है। आरोपी की उम्र 22 वर्ष है जबकि पीड़िता की उम्र 30 वर्ष थी और दुर्भाग्यपूर्ण मृत्यु के समय, वह 22 से 30 सप्ताह के बीच गर्भावस्था में थी - दूसरी पीड़िता 8 वर्षीय मासूम लड़की थी: हत्याएं निर्मम तरीके से की थीं जबकि दोनों पीड़िताएं असहाय और निराशा की स्थिति में थीं। कोई भी प्रकार की विकृति किसी व्यक्ति को दरवाजे को खोलने के लिए दीवार से ईंटें हटाने और वासना को संतुष्ट करने में विफलता पर इतनी भयानक हत्याएं करने के लिए प्रेरित नहीं करेगी। हत्याओं और बुरे चरित्र तथा अभियुक्त की प्रतिष्ठा के संबंध में अभियुक्त की माँ की साक्ष्य महत्वपूर्ण हो जाती हैं और इस आधार पर यह नहीं माना जा सकता है कि न्यायालय के समक्ष कोई भी ऐसी परिस्थितियाँ हैं, जिनमें अभियुक्त के सुधरने या पुनर्वासित होने की संभावना है।[440-बी-जीजे]

कामता तिवारी बनाम स्टेट ऑफ एम.पी. (1996) क्रि. लॉ जर्नल 4158; मच्छी सिंह बनाम पंजाब राज्य, एआईओर (1983) एससी 957 और बचन सिंह बनाम पंजाब राज्य, [1980] 2 एससीसी 684, का उल्लेख किया गया।

2. दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 235(2) या धारा 354(3) के अन्तर्गत कोई त्रुटि नहीं पाई गई है। दोनों पक्षों को सुना गया और कोई भी पक्ष सजा के संबंध में कोई दस्तावेजी या मौखिक साक्ष्य नहीं देना चाहता था। लेकिन दलीलों और उन पर विचार करने के तथ्य से एक निश्चित निष्कर्ष निकलता है कि न्याय में कोई गड़बड़ी नहीं हुई है। कानून की किताब में धारा 235(2) के प्रावधानों को शामिल किया गया है ताकि यह देखा जा सके कि साक्ष्य की उचित सराहना हो और सजा के संबंध में सुनवाई का उचित अवसर दिया जाए, लेकिन अगर आरोपियों की ओर से वकील मौजूद होने के बावजूद भी इस तरह के अवसर का कोई लाभ नहीं उठाना चाहते हैं, तो मामले को आगे स्थगित करने का सवाल ही नहीं उठता है। यह सच है कि अभियुक्त से औपचारिक प्रश्न पूछकर दायित्व का निर्वहन नहीं किया जाता है - न्यायाधीश को अभियुक्त से ऐसी सामग्री प्राप्त करनी होती है जिसका सजा के प्रश्न पर असर पड़ेगा। वास्तव में ट्रायल कोर्ट द्वारा सामग्री प्राप्त करने का ऐसा वास्तविक प्रयास किया गया था - लेकिन जैसा कि रिकॉर्ड से पता चलता है, इस अवसर का कोई फायदा नहीं उठा सका। निर्णय स्थगित कर दिया गया और वकील से पूछा गया - और

तुरंत जवाब आया कि उम्र और कोई पिछला रिकॉर्ड नहीं होने के कारण सजा पर विचार किया जाना चाहिए: इन दोनों पहलुओं पर सत्र न्यायाधीश द्वारा विधिवत विचार किया गया है और इसमें कोई त्रुटि नहीं है। [441-बी-सी; 437-जी-एच; 438-ए-डी]

मुनिअप्पन बनाम तमिलनाडु राज्य, [1981] 3 एससीसी 11; संता सिंह बनाम पंजाब राज्य, [1976] 4 एससीसी 190 और अलाउद्दीन मियां बनाम बिहार राज्य, [1989] 3 एससीसी 5, का उल्लेख किया गया।

3. भारतीय दंड संहिता की धारा 302 अदालत को हत्या के अपराधी को मौत या आजीवन कारावास से दंडित करने का अधिकार देती है - इसलिए कानून ने अदालत को अपराधी को मौत या आजीवन कारावास से दंडित करने का विवेक प्रदान किया है: जाहिर तौर पर यह एक गंभीर फैसला है और न्यायालय पर भारी बोझ डाला गया है। इस विवेक का प्रयोग कानून की अवधारणा के अनुरूप और इस तरीके से किया जाना चाहिए ताकि न्याय के उद्देश्यों की पूर्ति हो सके और इस मामले के इस पहलू पर इस न्यायालय ने बिना किसी अनिश्चित शर्तों के मृत्युदंड का फैसला सुनाया है। अदालत के क्षेत्राधिकार के दायरे के भीतर, अदालतों को मृत्युदण्ड देने का विवेकाधिकार प्राप्त है किन्तु अदालतों को इस अधिकार का अविवेकपूर्ण रूप से प्रयोग करने की अनुमति नहीं दी गयी है। यह केवल सबसे दुर्लभ मामलों में है कि इस विवेक को मृत्युदंड के संबंध में प्रयोग किया जाना चाहिए। [434-E-G]

4. कानूनी अदालतों ने अपने दृष्टिकोण में काफी सुसंगतता बनाए रखी है कि अपराध की गंभीरता और दंड के बीच एक उचित संतुलन बनाए रखना चाहिए। यह सच है कि अनुपातहीन रूप से कठोर दंड पारित नहीं किया जाना चाहिए, लेकिन यह भी कानूनी अदालतों को विकल्प प्रदान नहीं करता है कि वे एक ऐसा दंड पारित करें जो अपराध की प्रकृति के दृष्टिकोण से स्पष्ट रूप से अपर्याप्त हो, क्योंकि एक अपर्याप्त दंड समाज पर एक निवारक प्रभाव नहीं डाल पाएगा। दंड इसलिए नहीं दिए जाते हैं क्योंकि उसे आंख के बदले आंख या दांत के बदले दांत होना चाहिए, बल्कि समाज पर उसका उचित प्रभाव होना चाहिए। अनावश्यक कठोरता की आवश्यकता नहीं है लेकिन अपर्याप्त दंड से समुदाय को पीड़ा हो सकती है।

[435-G-H; 436-A]

धनंजय चट्टर्जी उर्फ धना बनाम पश्चिम बंगाल राज्य, [1994] 2 एससीसी 220, संदर्भित।

आपराधिक अपीलात्मक क्षेत्राधिकार: आपराधिक अपील संख्या 548, 1999।

मध्य प्रदेश उच्च न्यायालय में 17.3.98 की तिथि के निर्णय और आदेश से।

एस. मुरलीधर, (ए.सी.) अपीलकर्ता के लिए।

उमा नाथ सिंह और नवीन सिंह प्रत्यर्थी के लिए।

अदालत का निर्णय बनर्जी, जे. द्वारा दिया गया।

अनुमति प्रदान की गई।

यह अपील विशेष अनुमति द्वारा मध्य प्रदेश के उच्च न्यायालय की डिवीजन बेंच द्वारा मृत्युदंड की पुष्टि के आदेश के खिलाफ है। क्योंकि अपील सिर्फ उच्च न्यायालय द्वारा मृत्यु दंड की सजा की पुष्टि करने की हद तक है तथा अपील के पक्ष में तर्क/दलीलें केवल सजा के प्रश्न की हद तक ही दी गयी है। अतः यहां यह ध्यान दिया जाना सुविधाजनक होगा कि दुर्लभतम या दुर्लभ मामलों में ही मृत्युदंड की सजा दी जानी चाहिए और इसी धारणा पर ही श्री मुरलीधर, जो न्याय मित्र के पद पर नियुक्त हैं, ने बलपूर्वक तर्क दिया है कि सत्र न्यायालय द्वारा जो सजा पारित की गयी है और जिसे उच्च न्यायालय द्वारा पुष्ट किया गया है, वह न्याय की मौलिक अवधारणा व न्यायस्थिति के विपरीत है। उन्होंने अपने तर्कों के संबंध में धारा 235(2) एवं धारा 354(3) दंड प्रक्रिया संहिता के उपर निर्भरता जाहिर की। किन्तु कानूनी मुद्दों की परिस्थितियों पर विचार करने से पहले प्रकरण के तथ्यात्मक मुद्दों की ओर ध्यान देना सुविधाजनक होगा, ताकि इस स्थिति का आकलन किया जा सके कि क्या इस मुद्दे की स्थिति वास्तव में पूरी तरह और समान रूप से सबसे दुर्लभ मामलों की श्रेणी में आती है।

तथ्यात्मक स्थिति यह दर्शाती है कि अपीलकर्ता के विरुद्ध धारा 302 सपठित धारा 201 आरोप है। उसके उपर आरोप है कि मृतका देव वती,

उम्र 30 वर्ष और बालिका रेणू, उम्र 8 वर्ष की मृत्यु 7 जनवरी, 1997 की रात को कारित की थी। हालांकि, महिला और कन्या बच्ची दोनों ही आरोपी से संबंधित थीं, जो क्रमशः भाभी (भाई की पत्नी) और भतीजी थीं। अदालत के सामने आरोपी की मां और भतीजे द्वारा दिए गए साक्ष्यों के अलावा, आरोपी ने खुद भी अपने परीक्षण के दौरान धारा 313 के तहत स्पष्ट रूप से यह बात कही और आरोपी ने अपनी भाभी और भतीजी की हत्या करने की बात स्वीकार की है - अतः परिस्थिति इस प्रकार है कि अभियुक्त ने स्वयं अपनी भाभी और भतीजी की मृत्यु करना स्वीकार किया और उसने यह कारण पेश किया है कि भाभी ने उसे पर्याप्त भोजन नहीं दिया और इसी के कारण उसने क्रोधित हो कर इस अपराध को कारित किया- लेकिन बच्ची का क्या? इस संबंध में कोई भी स्पष्टीकरण उसके द्वारा पेश नहीं किया गया - क्या यह इसलिए है कि बच्ची ने मां की भयानक हत्या को देखा था और इसलिए बच्ची को भी खत्म करना पडा - हो सकता है, किन्तु हमें किसी भी हाइपोथेसिस पर आगे नहीं बढ़ना चाहिए, तथ्य यह है हालांकि, दोनों सत्र न्यायाधीश और उच्च न्यायालय ने आरोपी के इस संस्करण को अस्वीकार कर दिया है।

माँ ने अपनी गवाही में स्पष्ट शब्दों में कहा कि भाभी के साथ बलात्कार करने का प्रयास किया गया था और प्रतिरोध के कारण, बलात्कारी ने अपराध किया और इस संबंध में आरोपी से पूछा गया - जवाब आता है कि भाभी के सभी बच्चे नाजायज़ बच्चे थे और उसके अपने

पिता के घर जाने और उस क्षेत्र में दोस्तों के साथ घनिष्ठता के कारण दो बच्चे पैदा करने की यह स्थिति पैदा हुई थी। हालाँकि, संयोगवश, जिस महिला की हत्या की गई, उसकी मृत्यु के समय गर्भावस्था उन्नत अवस्था में थी।

रिकॉर्ड पर मौजूद साक्ष्य दर्शाते हैं कि 7 जनवरी, 1997 की मनहूस रात को, ग्राम रकरी टोला, टिकुरी, जिला रीवा, मध्य प्रदेश में, आरोपी घर में घुस गया और माँ के कमरे के बाहर से कुंडी लगा दी और उसके बाद दीवार व 'चौकट' से कुछ ईंटें हटा दीं और इस तरह उस कमरे में प्रवेश की सुविधा हो गई, जहां मृतक भाभी बच्चे के साथ सो रही थी और उसे देवर के हाथों इस भयानक मौत का सामना करना पड़ा था। रिकॉर्ड पर मौजूद साक्ष्य दर्शाते हैं कि आरोपी ने अपनी भाभी की हत्या रात करीब 11 बजे की। पहले पारसूल के वार से और फिर कुल्हाड़ी (तांगा) से उसकी गर्दन पर वार कर उसका सिर धड़ से अलग कर दिया और उसकी 8 साल की बेटी रेनू को अपने साथ जंगल में ले जाकर उस पर कुल्हाड़ी से वार कर मार डाला और ऐसा कहा जाता है कि उसकी महुवा महाराज को बलि चढ़ाकर उसे रेत में पत्थरों से दफना दिया था और उसके बाद आरोपी घर वापस आता है और मृतक भाभी के शरीर को कपड़े में बांधकर जंगल में ले जाता है और सिर को बालों से बांधकर एक शाखा पर लटका देता है और शव को महुआ के पेड़ के तने पर रख देता है।

जहां तक चोट लगने का संबंध है. पी.डब्लू. 11, डॉ. और.और. मिश्रा

ने कहा:-

"(1) शरीर पर कठोर मोर्टिस मौजूद था और पूरे शरीर पर खून जमा हुआ था। सिर शरीर से अलग था। पूरा चेहरा, सिर और बाल खून से सने हुए थे। कपड़े, साड़ी, ब्लाउज, पेटीकोट भी खून से सने हुए थे। बाईं आंख क्षतिग्रस्त हो गई। नाक के पुल पर 3x2x1 सेमी लंबाई, चौड़ाई और गहराई आकार का घाव और नाक की हड्डी टूट गई।

(2) सिर के पिछले हिस्से पर कटा हुआ घाव, आकार 13 सेमी. x 4 सेमी. x 4 सेमी. लंबाई, चौड़ाई और गहराई. चोट वाले स्थान की हड्डी कट गयी थी, मस्तिष्क का पदार्थ उस स्थान पर दिखाई दे रहा था और क्षतिग्रस्त हो गया था।

(3) गर्दन के ऊपरी भाग पर कटा हुआ घाव। सिर धड़ से अलग हो गया है. इस चोट से गर्दन की सारी संरचना, मांसपेशियाँ, नसें कट गईं।

(4) बाईं ओर की मध्यमा उंगली, अनामिका और तर्जनी पर कटा हुआ घाव और चोट का आकार 3x2x1 सेमी था, जो आखिरी नस पर मौजूद था। 2. उपरोक्त सभी चोटें कठोर और कुंद वस्तु से की गई प्रतीत होती हैं।"

उसी तारीख को, वही कांस्टेबल मेरे सामने गुलाब प्रसाद की बेटी रेनू, उम्र 7 वर्ष, का शव पोस्टमार्टम के लिए लाया था। दोपहर ढाई बजे मैंने शव का पोस्टमार्टम शुरू किया। और परीक्षण में निम्नलिखित पाया गया:-

"बाहरी परीक्षा : कठोर चोटों के निशान पूरे शरीर पर मौजूद थे और धूल के कण पूरे शरीर पर लगे हुए थे, खून का थक्का पूरे शरीर पर मौजूद था। सारे कपड़े खून से सने हुए थे। (1) दाहिनी ओर छाती के सामने कटा हुआ घाव, आकार 4.5 सेमी. x 1-1/2x1 सेमी. (2) गर्दन के बाईं ओर कटा हुआ घाव, गर्दन के पीछे के मध्य भाग का आकार 7 सेमी x 6 सेमी. x 2 सेमी. था। घाव की जगह पर मांसपेशियां और नसें कटी हुई थीं. गर्दन की तीसरी और चौथी हड्डी टूट गई। (3) गाल के बायीं ओर कटा हुआ घाव। साइज़ 6x3x3 सेमी था. और जबड़े की हड्डी टूट गयी थी और बायीं ओर थी। (4) दाहिनी तर्जनी और मध्यमा उंगली पर कटा हुआ घाव। साइज़ 2x1x1 सेमी था. बाएं हाथ की मध्यमा उंगली कटी हुई अलग पाई गई यानी ऊपरी हिस्सा अलग था."

विद्वान सत्र न्यायाधीश ने इस साक्ष्य पृष्ठभूमि के आधार पर मामले में मौत की सजा देना उचित समझा और जिसकी उच्च न्यायालय ने पुष्टि की और इसी परिप्रेक्ष्य में सजा के मूल मुद्दे का आकलन किया जाना चाहिए।

संहिता की धारा 235(2) के गैर-अनुपालन के संबंध में मुद्दे पर ध्यान आकर्षित करते हुए श्री मुरलीधर ने तर्क दिया कि आरोपी को सुनवाई के लिए प्रभावी और पर्याप्त अवसर नहीं दिए जाने से अनिवार्य कानूनी आवश्यकता का उल्लंघन हुआ है। सजा के प्रश्न पर- यह प्रस्तुत किया गया है कि धारा 235(2) को स्पष्ट रूप से पढ़ने पर सजा के प्रश्न पर अभियुक्त की सुनवाई की आवश्यकता एक खाली औपचारिकता नहीं है, बल्कि एक अनिवार्य आवश्यकता है और अपने तर्क के समर्थन में न्याय निर्णय मुनिअप्पन बनाम तमिलनाडु राज्य, 1981(3) एससीसी 11 के निर्णय पर मजबूत निर्भरता रखी गई है। उक्त मामले में न्यायालय ने पृष्ठ 13 पर टिप्पणी की:-

"हम इस बात से भी संतुष्ट नहीं हैं कि विद्वान सत्र न्यायाधीश ने अभियुक्त से यह जानने का कोई गंभीर प्रयास नहीं किया कि वह सजा के प्रश्न पर क्या कहना चाहता था। विद्वान न्यायाधीश का केवल इतना कहना है कि "जब अभियुक्त से सजा के प्रश्न पर पूछा गया, उसने कुछ नहीं कहा।" सीऔरपीसी की धारा 235(2) में अभियुक्त को सजा के प्रश्न पर सुनने का दायित्व मात्र उससे आैपचारिक प्रश्न पूछकर पूरा नहीं किया जा सकता है। अपितु न्यायाधीश को अभियुक्त से सभी जानकारी प्राप्त करने का वास्तविक प्रयास करना चाहिए जो अंततः सजा के प्रश्न पर असर डालेगी... वे

प्रश्न जो न्यायाधीश धारा 235(2) के तहत अभियुक्त से पूछ सकते हैं और अभियुक्त उन सवालों के जो जवाब देता है, वह साक्ष्य अधिनियम की संकीर्ण बाधाओं से परे है। जब अदालत सजा के प्रश्न पर सुनती है तो वह एक पूरी तरह से अलग डोमेन में होते हैं, जहां पर तथ्य और कारक जिस प्रकार काम करते हैं वह पूरी तरह से दोषसिद्धि के प्रश्न पर आये तथ्यों व कारकों से भिन्न होते हैं। दोषसिद्धि के प्रश्न पर आगे आएं।"

श्री मुरलीधर ने तर्क दिया कि कुछ अन्य कारक भी हैं जिन्हें उचित सजा पर निर्णय लेने में न्यायालय को भी ध्यान में रखना होगा; उसकी शिक्षा, उसका घरेलू जीवन, सामाजिक समायोजन और अपराधी की भावनात्मक और मानसिक स्थितियाँ और इस संदर्भ में सांता सिंह बनाम पंजाब राज्य, 1976(4) एससीसी 190 में इस न्यायालय के निर्णय पर निर्भरता रखी गई थी, जिसमें न्यायालय ने यह कहा:-

"कारण यह है कि एक उचित सजा कई कारकों का मिश्रण है जैसे कि अपराध की प्रकृति, परिस्थितियाँ - अपराध को कम करना या बढ़ाना - अपराधी का पूर्व आपराधिक रिकॉर्ड, यदि कोई हो, अपराधी की उम्र, अपराधी का रिकॉर्ड, रोजगार के संबंध में, शिक्षा, घरेलू जीवन, संयम और सामाजिक समायोजन के संदर्भ में अपराधी की पृष्ठभूमि, 'अपराधी' की भावनात्मक और मानसिक स्थिति, अपराधी के

पुनर्वास की संभावनाएं, संभावना अपराधी की समुदाय में सामान्य जीवन में वापसी, अपराधी के उपचार या प्रशिक्षण की संभावना, यह संभावना कि सजा अपराधी या अन्य लोगों द्वारा अपराध को रोकने के रूप में काम कर सकती है और वर्तमान समुदाय की आवश्यकता, यदि कोई हो, विशेष प्रकार के अपराध के संबंध में इस तरह के निवारक के लिए। ये ऐसे कारक हैं जिन्हें उचित सजा पर निर्णय लेने में अदालत द्वारा ध्यान में रखा जाना चाहिए और इसलिए, विधायिका ने महसूस किया कि, इस उद्देश्य के लिए, एक अलग चरण प्रदान किया जाना चाहिए दोषसिद्धि के बाद जब अदालत सजा पर असर डालने वाले इन कारकों के संबंध में आरोपी को सुन सकती है और फिर आरोपी को उचित सजा सुना सकती है। इसलिए, धारा 235(2) में नया प्रावधान।"

श्री मुरलीधर ने आगे तर्क दिया कि अभियुक्त के इस अनुल्लंघनीय अधिकार को मान्यता देने का संवैधानिक आधार भी इस न्यायालय द्वारा अलाउद्दीन मियां बनाम बिहार राज्य, 1989(1) और सी और (सी और एल) 628: 1989(3) 5 एस सी सी में बहुत स्पष्ट रूप से स्पष्ट किया गया है। जिसमें इस न्यायालय ने रिपोर्ट के पृष्ठ 20 पर कहा:

"आरोपी को सुनने की आवश्यकता का उद्देश्य प्राकृतिक न्याय के नियम को पूरा करना है। यह निष्पक्ष न्याय की

मूलभूत आवश्यकता है कि जो आरोपी अब तक अपराध के सवाल पर अभियोजन साक्ष्य पर ध्यान केंद्रित कर रहा था, उसे दोषी पाए जाने पर पूछा जाना चाहिए कि क्या सजा के सवाल पर उसके पास कहने के लिए कुछ भी है या देने के लिए कोई सबूत है। यह और भी जरूरी है क्योंकि अदालतों को आम तौर पर सजा के मामले में व्यापक विवेक से चुनाव करना होता है। निर्णय लेने में अदालत की सहायता करने के लिए विधायिका द्वारा धारा 235 में उप-धारा (2) को लाया गया। इसलिए उक्त प्रावधान एक दोहरे उद्देश्य को पूरा करता है; यह प्राकृतिक न्याय के नियम को संतुष्ट करता है... और साथ ही अदालत को चुनने में मदद करता है। सजा दी जानी चाहिए... इसमें कोई संदेह नहीं है कि प्रावधान हितकर है और इसका सख्ती से पालन किया जाना चाहिए। यह स्पष्ट रूप से अनिवार्य है और इसे केवल औपचारिकता के रूप में नहीं माना जाना चाहिए... जीवन या मृत्यु के मामले में..... पीठासीन अधिकारी को अभियुक्त के वैधानिक अधिकार के लिए उच्च स्तर की चिंता दिखानी चाहिए और इसे महज औपचारिकता नहीं मानना चाहिए... हमारा मानना है कि एक सामान्य नियम के रूप में ट्रायल कोर्ट को दोषसिद्धि दर्ज करने के बाद मामले को स्थगित कर देना चाहिए मामले को भविष्य की तारीख पर ले जाएं और अभियोजन पक्ष के साथ-साथ बचाव

पक्ष को भी सजा के सवाल से संबंधित प्रासंगिक सामग्री उसके समक्ष रखने के लिए कहें और उसके बाद अपराधी को दी जाने वाली सजा सुनाएं..."

तर्कों के मैरिट्स पर चर्चा शुरू करने से पहले, विधायी परिप्रेक्ष्य का पता लगाने के लिए धारा 302 के सही अर्थ पर ध्यान देना सुविधाजनक होगा।

भारतीय दंड संहिता की धारा 302 अदालत को हत्या के अपराधी को मौत या आजीवन कारावास से दंडित करने का अधिकार देती है - इसलिए कानून ने अदालत को अपराधी को मौत या आजीवन कारावास से दंडित करने का विवेक प्रदान किया है: जाहिर है, यह एक गंभीर निर्णय है और न्यायालय पर यह भारी बोझ है - हालाँकि, इस विवेकाधिकार का प्रयोग कानून की अवधारणा के अनुरूप और तरीके से किया जाना चाहिए ताकि न्याय के उद्देश्यों की पूर्ति हो सके और मामले के इसी पहलू पर अदालत ने मामलों की एक लम्बी श्रृंखला में बिना किसी अनिश्चित शर्तों के यह निर्धारित किया है कि मृत्युदण्ड की सजा का फैसला भले ही अदालतों के अधिकार क्षेत्र के दायरे में हो, लेकिन इससे अदालतों को अंधाधुंध तरीके से इसका प्रयोग करने की अनुमति नहीं मिलती है - इस न्यायालय ने एक से अधिक अवसरों पर यह स्पष्ट किया है कि केवल दुर्लभतम मामलों में ही मृत्युदंड के संबंध में इस विवेक का प्रयोग किया जाना चाहिए। हमारा समाज एक सभ्य समाज है - दांत के बदले दांत और आंख के बदले आंख

को मानदंड नहीं बनाया जाना चाहिए; सभ्यता और सामाजिक व्यवस्था के साथ कानून की उचित प्रक्रिया हमें मृत्युदंड देने के संबंध में जल्दबाजी करने की अनुमति नहीं देनी चाहिए और वास्तव में न्यायालयों को इस दिशा में धीमा होना चाहिए।

न्याय सर्वोच्च है और न्याय समाज के लिए लाभकारी होना चाहिए ताकि समाज बेहतर स्थिति में आ सके। कानून अदालतें समाज के लिए मौजूद हैं और उन्हें मामले में आवश्यक कार्रवाई करने के लिए मौके पर आना चाहिए, और इस तरह से कार्य करना चाहिए ताकि समाज की बुनियादी आवश्यकता को पूरा किया जा सके। यह समाज की आवश्यकता है और कानून को इसकी आवश्यकता पर प्रतिक्रिया देनी चाहिए। कानून का सबसे बड़ा गुण इसका लचीलापन और इसकी अनुकूलनशीलता है, इसे समय-समय पर बदलना चाहिए ताकि यह लोगों की पुकार, समय की आवश्यकता और दिन की व्यवस्था का जवाब दे सके। वर्तमान समाज में, अपराध को अब एक सामाजिक समस्या माना जाता है और इसलिए जहाँ तक सजा का सवाल है, कानूनी क्षितिज में भी वैचारिक रूप से एक जबरदस्त बदलाव देखा जा रहा है।

इस संबंध में एक विचारधारा यह प्रचारित करती है कि कानून अदालत का कार्य एक समाज सुधारक का है और इस तरह कार्य करने के अपने प्रयास में, सजा को रोकने का सवाल ही नहीं उठता क्योंकि समाज अन्यथा इस तरह के हिंसक कृत्यों या गतिविधियों का शिकार हो जाएगा,

क्योंकि उम्र बढ़ने के साथ-साथ कम उम्र के लड़कों की मानसिक स्थिति भी बदलती रहती है और यदि समाज में अहंकार विकसित हो जाता है या बदले की भावना आ जाती है, तो समाज नष्ट हो जाएगा। यह तर्क पेश किया कि अपराधी को यदि कड़ी से कड़ी सजा नहीं दी गयी [उसके अपराध की प्रकृति के आधार पर] तो यह समाज नष्ट हो जाएगा।

दूसरे मत का दावा है कि चूंकि एक ने दूसरे की जान ले ली है, इसका मतलब यह नहीं है कि उसकी जान ले ली जाएगी, लेकिन मुकदमे के दौरान अगर ऐसे तरीकों या गतिविधियों की प्रकृति सामने आती है, जिसके परिणामस्वरूप किसी व्यक्ति की जान ली गयी है तो कानूनी अदालतों की ओर से कोई ढिलाई नहीं होनी चाहिए, अन्यथा लोग और समाज जीवन की सुरक्षा की झूठी भावना में डूब जाएगा, जबकि ऐसे जघन्य अपराध अभी धरती पर अस्तित्व में हैं।

वास्तव में कानून अदालतें इस दृष्टिकोण में सुसंगत रही हैं कि अपराध की गंभीरता और सजा के बीच एक उचित अनुपात बनाए रखा जाना चाहिए। हालांकि यह सच है कि असंगत रूप से गंभीर सजा को पारित नहीं किया जाना चाहिए। किन्तु यह भी अनुचित है कि अदालत के पास ऐसा विकल्प है कि वह ऐसी सजा पारित करें, जो की अपराध की गंभीरता के अनुपात में अपर्याप्त सजा हो। क्योंकि अपर्याप्त सजा समाज पर निवारक प्रभाव डालने में असमर्थ है। सजा इसलिए नहीं दी जाती कि यह आंख के बदले आंख या दांत के बदले दांत है, बल्कि इसलिए दी जाती

है कि इसका समाज के ऊपर उचित प्रभाव पड़ सके: हालांकि अनुचित कठोरता की आवश्यकता नहीं है, लेकिन अपर्याप्त सजा से समुदाय को परेशानी हो सकती है।

उपरोक्त मामले से निपटने के बाद, संहिता की धारा 235(2) के अनुपालन के संबंध में विद्वान सत्र न्यायाधीश के निष्कर्ष को नोट करना सुविधाजनक होगा। निर्णय के पृष्ठ 22 पर विद्वान सत्र न्यायाधीश ने दर्ज किया:-

"26. उपरोक्त सभी साक्ष्यों के अवलोकन से अभियुक्त जय कुमार के विरुद्ध बिना किसी संदेह के आईपीसी की धारा 302 एवं धारा 201 के अंतर्गत आरोप सिद्ध पाया जाता है। अतः अपराध में सजा के आदेश के प्रश्न पर सुनवाई हेतु निर्णय स्थगित किया जाता है।"

एसडी/- और.सी. चंदेल

सत्र न्यायाधीश,

रीवा एम.पी.

27. सजा के प्रश्न पर दोनों पक्षों के विद्वान अधिवक्ता को सुना गया। उपरोक्त के संबंध में दोनों पक्ष कोई भी दस्तावेजी मौखिक साक्ष्य नहीं देना चाहते हैं। बचाव पक्ष के वकील का अनुरोध है कि आरोपी की उम्र 22 वर्ष है और उसका कोई

पुराना आपराधिक इतिहास नहीं है और यह ऐसा मामला नहीं है जिसमें आरोपी को अधिकतम सजा यानी मौत की सजा दी जा सके। विद्वान वकील ने 1996(1) अपराध 137 (एस.सी.), रावेंदर त्र्यंबक चोथमल बनाम महाराष्ट्र राज्य का हवाला दिया। विद्वान लोक अभियोजक का तर्क है कि अभियुक्त ने अपनी माँ समान भाभी मृत्तिका देववती के साथ दुष्कर्म का प्रयास किया तथा इसमें असफल होने पर उसकी नृशंस हत्या कर उसका सिर धड़ से अलग कर दिया तथा सिर को पेड़ पर लटका कर लटका दिया और शव को पेड़ पर रख दिया। इसके साथ ही आरोपी नाबालिग बच्ची मृतक कुमारी रेनू को सिर्फ इसलिए जंगल में ले गया क्योंकि उसने आरोपी को हत्या करते हुए देख लिया था। पहले तो उसने जंगल में पूजा-अर्चना की और फिर कुल्हाड़ी से उसकी हत्या कर दी। अभियुक्त का उपरोक्त क्रूर कृत्य एक ऐसा मामला है जिसमें अभियुक्त को फाँसी की सजा दिया जाना आवश्यक है। विद्वान लोक अभियोजक ने 1996 सी.ओ.एल.एल.जे. 4158, कामता तिवारी बनाम म.प्र. राज्य, 1996 ना.नि.सा.? 18, अमृतलाल सोमेश्वर जोश बनाम महाराष्ट्र राज्य का संदर्भ दिया है। मैंने विद्वान वकील द्वारा संदर्भित कानूनी दृष्टांतों का ध्यानपूर्वक अध्ययन किया है और मैं न्यायिक दृष्टांतों में प्रतिपादित सिद्धांतों से सहमत हूँ।

28. जैसा कि प्रकरण में आये साक्ष्यों से स्पष्ट है कि अभियुक्त ने मृतिका देववती जो कि उसकी भाभी थी, के साथ दुष्कर्म करने का प्रयास किया तथा देववती द्वारा इसका विरोध किये जाने पर उसने उसकी हत्या कर दी। इतना ही नहीं उसने कुल्हाड़ी से सिर को धड़ से अलग कर दिया और शव को धोती में बांधकर हरदिया पहाड़ी के जंगल में ले गया और वहां मृतक के सिर को पेड़ से लटका दिया और शव को पेड़ के ऊपर ठिकाने लगा दिया। क्योंकि मृतिका कुमारी रेनू ने उपरोक्त आरोपी को मृतिका देववती की हत्या करते हुए देख लिया था। इसी कारण से आरोपी ने नौ साल की नाबालिग बच्ची (महिला) मृतक कुमारी रेनू जो कि मृतक देव वती की बेटी थी, को जंगल में महुआ महाराज को चढ़ा दिया और इसके अलावा टूटा हुआ शीशा, पुराना आवला, सरसों का तेल, अमरूद, प्याज, बिंदिया भी चढ़ा दिया। (धारा 313 दंड प्रक्रिया संहिता के अंतर्गत प्रश्न क्रमांक 25 देखें) और फिर मृतिका कुमारी रेनू के सिर पर कुल्हाड़ी से वार कर उसकी हत्या कर दी और उसके पैर और सिर पर पत्थर रखते हुए, उसके शव को बालू रेत के नीचे रखकर शव को दबा दिया।

.....

निष्कर्ष पर पहुंचने से पहले, मैंने कई बार इस पर गंभीरता से चर्चा की, लेकिन मामले की परिस्थितियों और आरोपी जय कुमार के क्रूर कृत्य को ध्यान में रखते हुए, उसे आजीवन कारावास की सजा देना पर्याप्त नहीं होगा। इससे समाज पर कोई उचित प्रभाव नहीं पड़ेगा। इसलिए संपूर्ण परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए आरोपी जय कुमार को मृतिका देववती और मृतिका कुमारी रेनू की हत्या करने के लिए धारा 302 आईपीसी के तहत दंडनीय अपराध के लिए मौत की सजा सुनाई जाती है। इसके अलावा, आरोपी को भारतीय दंड संहिता की धारा 201 के तहत दंडनीय अपराध के लिए 7 साल के कठोर कारावास की सजा सुनाई गई है। इस मामले में आरोपी जय कुमार दिनांक 8.1.1997 से न्यायिक हिरासत में है।”

जैसा कि ऊपर दर्ज विद्वान सत्र न्यायाधीश का आदेश स्पष्ट रूप से दर्शाता है कि दोनों पक्षों को सुना गया और कोई भी पक्ष सजा के संबंध में कोई दस्तावेजी या मौखिक साक्ष्य नहीं देना चाहता था। लेकिन मद संख्या 27 और 28 से प्रतीत होने वाले प्रस्तुतीकरण और उन पर विचार के तथ्य हमें एक निश्चित निष्कर्ष पर ले जाते हैं कि न्याय करने में कोई गलती नहीं हुई है। यह ध्यान दिया जाना चाहिए कि कानून ने धारा 235 (2) के प्रावधानों को कानून की किताब में शामिल किया है ताकि यह देखा जा

सके कि साक्ष्य की उचित सराहना हो और सजा के संबंध में सुनवाई का उचित अवसर दिया जा सके, अभियुक्त की ओर से वकील भी उपस्थित हैं, सजा के प्रश्न पर सुनवाई का अवसर भी दिया गया किन्तु उनके द्वारा इस अवसर का लाभ नहीं उठाया जाता है, तो मामले को आगे स्थगित करने का प्रश्न ही नहीं उठता। यह सच है कि अभियुक्त से औपचारिक प्रश्न पूछने से दायित्व का निर्वहन नहीं होता। न्यायाधीश को अभियुक्त से ऐसी सामग्री प्राप्त करनी होती है जिसका सजा के सवाल पर असर पड़ेगा और कानून की इस आवश्यकता पर है, आइए विचार करते हैं। क्या न्यायाधीश को अभियुक्त से ऐसी सामग्री प्राप्त करने का वास्तविक प्रयास करना चाहिए। पर जैसा कि रिकॉर्ड दर्शाता है कि इस अवसर का कोई लाभ नहीं उठाया गया तथा बचाव पक्ष के अधिवक्ता ने मात्र दोनों तथ्यों पर ही विचार करने का अनुरोध किया। (ए) आरोपी की उम्र 22 वर्ष है, और (बी) कोई अन्य पिछला आपराधिक रिकॉर्ड नहीं है। हम रिकॉर्ड पर रखना चाहते हैं कि कोशिश करने वाले न्यायाधीश ने अत्यधिक चिंता दिखाई है और बहुत विचार-विमर्श के बाद सजा देने के मामले में उपरोक्त निष्कर्ष पर पहुंचे हैं। मामले के निर्णय का कारण यहां इसलिए देखा जाना आवश्यक था, जिससे कि निर्णय में कोई त्रुटि नहीं की गयी हो। निर्णय स्थगित कर दिया गया और वकील से पूछा गया - और तुरंत जवाब आया कि उम्र और कोई पिछला रिकॉर्ड नहीं होने के कारण सजा पर विचार किया जाना चाहिए। इन दोनों पहलुओं पर सत्र न्यायाधीश द्वारा विधिवत विचार किया गया है और हमें इसमें कोई कमजोरी नजर नहीं आती है।

संयोगवश, सजा के मुद्दे पर उच्च न्यायालय ने बचन सिंह बनाम पंजाब राज्य, [1980]2 एससीसी 684 और मामलों की एक लंबी श्रृंखला में इस न्यायालय के फैसले पर भरोसा किया और उस पर भरोसा करते हुए उच्च न्यायालय ने कहा:

"मकसद के सबूत का अभाव और आरोपी की युवावस्था दो ऐसे कारक हैं जिन पर यहां जोर दिया गया है और यह भी कि उसने अपना गुनाह कबूल कर लिया है। एक बार को हम आरोपी की मां के इस बयान को भी नजरअंदाज कर देते हैं कि वह मृतक देव वती की पवित्रता का उल्लंघन करना चाहता था क्योंकि अभियुक्त का इस संबंध में कोई आचरण प्रमाणित नहीं पाया गया है। हालांकि इससे कोई फर्क नहीं पड़ता है। उसकी क्रूरता इस तथ्य से पता चलती है कि वह देव वती को दो टुकड़ों में मारकर उसके सिर और धड़ को महुआ के पेड़ पर लटकाने से संतुष्ट नहीं था। लेकिन अब वह पूरी तरह से झूठा दावा करके उसकी उसकी प्रतिष्ठा की हत्या कर रहा है कि वह बदचलन थी और उसके सभी बच्चे नाजायज थे। तथ्य यह है कि यहां तक कि उसकी मां ने भी उसके खिलाफ गवाही दी थी (बेशक, जो कि सच), यह दिखाने के लिए जाता है कि वह परिवार और समाज के लिए किस प्रकार का जीवित खतरा है। किसी मामले के दुर्लभ से दुर्लभतम होने या न होने के बारे में

निष्कर्ष तक पहुंचने के लिए मकसद के सबूत की अनुपस्थिति को इतना प्रासंगिक कारक नहीं माना गया है। जैसा कि हमने उपरोक्त उदाहरणों में देखा है यदि अपराध निर्दोष बच्चे और असहाय महिला पर अत्यधिक क्रूरता के साथ अपने चरम पर पहुंच जाता है तो मकसद की अनुपस्थिति अपराध की गम्भीरता को कम करने वाला कारक नहीं माना जा सकता है। इस मामले में आरोपी ने अपनी मां को कमरे में बंद करके महिला को मदद हेतु असहाय कर दिया था। वह दरवाजे के चारों ओर की दीवार की ईंटों को उखाड़कर पीड़िता के कमरे में घुस गया। हमने इसे एक तथ्य के रूप में पाया है कि मृतक की पवित्रता के खिलाफ पिछले पांच वर्षों से संदेह के बारे में उसके द्वारा ली गई दलील जानबूझकर झूठी और बाद में सोची गई बात है। इसी तरह, उनकी यह दलील भी जानबूझकर झूठी है कि मृतक बच्चे का जन्म उसके वैवाहिक घर में किसी के साथ अवैध संबंधों से हुआ था। उनकी यह दलील कि उन्हें पिछले 3 दिनों से खाना नहीं दिया जा रहा है, निश्चित रूप से झूठी है और जैसा कि पहले ही चर्चा की जा चुकी है, एक बाद का विचार है। मृतिका उसके भाई की पत्नी थी और उसे अपने भाई से कोई शिकायत नहीं थी। वह महिला के कमरे में घुस गया और उसे खींचकर बाहर ले आया और उसकी हत्या कर दी और उसका सिर काट दिया। वो इससे संतुष्ट नहीं था।

यह अचानक आया गुस्सा नहीं था बल्कि वह सोच-समझकर काम कर रहा था। वह अपनी 7 साल की भतीजी को ले गया और उसकी गर्दन काट दी, लेकिन बदनामी के लिए गर्दन को शरीर के बाकी हिस्सों से जोड़ दिया। उसकी कुछ उंगलियाँ काट दी गईं और शव को दफना दिया गया उसने महुवा के पेड़ की पूजा की थी और देव वती का सिर अलग से लटका दिया था तो इससे पता चलता है कि वह किस प्रकार का आदमी है। हत्या के दृश्य, महुवा के पेड़ पर रखे शव के दृश्य और रेत और पत्थरों के नीचे दबी हुई लड़की के दृश्य की विभिन्न तस्वीरों से इन सभी कारकों की पुष्टि होती है। केवल यह तथ्य कि आरोपी ने महिला और बेटी की हत्या करने की बात स्वीकार कर ली है, उसके लिए पछतावा नहीं है। वह झूठी और अशोभनीय दलीलों पर इसे सही ठहरा रहे हैं।' लगभग 22-30 सप्ताह की गर्भवती महिला और असहाय मासूम बच्चे की इस तरह की योजनाबद्ध तरीके से की गई भयानक और क्रूर हत्या समाज में सदमे की लहर उत्पन्न करने वाली है। इससे अंतरात्मा में विद्रोह की भावना पैदा होती है।”

प्रासंगिक तथ्यों में, हमें यह दर्ज करने में कोई हिचकिचाहट नहीं है कि मामले सजा को कम करने वाली ऐसी कोई परिस्थितियाँ प्रकट नहीं होती हैं और इस दिशा में हमारी खोज व्यर्थ थी, इसके विपरीत सब

न्यायाधीश के निष्कर्ष की उच्च न्यायालय द्वारा पुष्टि के लिए विकट परिस्थितियाँ बहुतायत में हैं। इसी मुद्दे पर श्री मुरलीधर ने तर्क दिया कि सजा के प्रश्न पर सुनवाई इस तथ्य के कारण भी आवश्यक है कि इस स्तर तक न्यायाधीश के पास सजा के प्रश्न से संबंधित प्रासंगिक गंभीर और कम करने वाली परिस्थितियों का पता लगाने का कोई अवसर नहीं होता है और यह मामले के रिकॉर्ड से भी प्रकट नहीं हो सकता है। हालाँकि, हम प्रासंगिक तथ्यों में श्री मुरलीधर की दलीलों पर अपनी सहमति दर्ज करने में असमर्थ हैं, जैसा कि यहां पहले देखा गया है।

बचन सिंह के मामले (सुप्रा) में तैयार किए गए दिशानिर्देश इस न्यायालय के बाद के दो फैसले मच्छी सिंह बनाम पंजाब राज्य, एआईऔर 1983 एससी 957 और कामता तिवारी बनाम एमपी राज्य, 1996 सीऔरएल में अपनाए गए। किन्तु उक्त दिशानिर्देश श्री मुरलीधर को कोई सहायता प्रदान नहीं करते हैं। कामता तिवारी के मामले में इस न्यायालय ने वास्तव में स्पष्ट रूप से कहा कि धारा 302 प्रावधानों के संदर्भ में विवेक का प्रयोग करने से पहले, सजा को गंभीर और कम करने वाली परिस्थितियों के सह-संबंध और मुद्दे के तथ्यात्मक मैट्रिक्स के आधार पर संतुलन बनाया जाना चाहिए। हालाँकि, इस मामले में, हमें संतुलन बनाने के लिए कोई संतुलन कारक नहीं मिला है। वास्तव में, जैसा कि ऊपर देखा गया है, उत्तेजक कारक प्रचुर मात्रा में हैं और उसे शमन करने वाली परिस्थितियां बिल्कुल भी नहीं हैं। विचाराधीन मामले के तथ्यात्मक

मैट्रिक्स में आरोपी की उम्र 22 वर्ष होने के कारण इसे सजा कम करने वाला कारक नहीं कहा जा सकता है। आरोपी की उम्र 22 साल है जबकि पीड़िता की उम्र 30 साल थी और दुर्भाग्यपूर्ण मौत के समय वह 22 से 30 सप्ताह के बीच गर्भवती थी - दूसरी पीड़िता एक मासूम लड़की थी - 8 साल की बच्ची; हत्याएं नृशंस थीं जबकि दो पीड़ित असहाय और अभागी स्थिति में थे। किसी भी हद की विकृति किसी व्यक्ति को दीवार से ईंटें हटाकर दरवाजा तोड़ने और वासना की पूर्ति में असफल होने पर इतनी भयानक हत्याएं करने के लिए प्रेरित नहीं कर सकती - मानव वासना को अपनी सीमाएं पता होनी चाहिए। जैसा कि ऊपर देखा गया है, सजा के मामले में किसी भी कम करने वाले कारकों के अस्तित्व पर विचार करना कल्पनाओं से परे होगा, यहां तक कि शवों के निपटान के मामले में अभियुक्त के बाद के आचरण को भी ध्यान में रखना होगा।

क्या ऐसे भयानक कृत्य के दृष्टिगत कोई सजा को कम करने वाली परिस्थितियाँ हो सकती हैं - इसका उत्तर स्पष्टतः नकारात्मक ही हो सकता है। आरोपी की मां को कमरे के अंदर बंद कर दिया गया था और वह खिड़की से हतप्रभ दर्शक के रूप में देखती रही और वह मां ही थी जिसने आरोपी की बुरे चरित्र और इलाके में बुरी प्रतिष्ठा के बारे में गवाही दी थी: भाभी की हत्या कर दी गयी, वो भी एक मासूम बच्चे के साथ - क्या यह वह आदमी है, जो समाज की ओर से किसी सहानुभूति का पात्र है - क्या यह वह आदमी है जो स्वयं में सुधार कर सकता है और क्या अदालतों को

ऐसे आदमी को सजा काटने के उपरान्त एक सभ्य जीवन जीने की अनुमति प्रदान करनी चाहिए: मां की साक्ष्य महत्वपूर्ण हो जाती है और इस संबंध में हम श्री मुरलीधर की दलीलों के साथ अपनी सहमति दर्ज करने में असमर्थ हैं कि प्रकरण में सजा को कम करने के लिए परिस्थिति है तथा अभियुक्त के सुधारन या पुनर्वास की संभावना है। संयोग से, उच्च न्यायालय ने आरोपी को "जीवित खतरे" के रूप में वर्णित किया है और जैसा कि ऊपर देखा गया है, हम इस वीभत्स कृत्य को देखते हुए इससे अधिक सहमत नहीं हो सकते हैं।

श्री मुरलीधर द्वारा दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 354(3) का अनुपालन न करने के संबंध में नाम मात्र प्रयास किया गया है। हालाँकि निर्णय के मुख्य भाग में उपलब्ध तर्कों को ध्यान में रखते हुए हम ऐसी स्थिति में नहीं हैं कि हम अपनी सहमति दर्ज करा सकें।

तथ्य स्पष्ट रूप से अभियुक्त की भ्रष्टता और आपराधिकता को स्थापित करते हैं। - छोटे बच्चे की अनमोल जान की भी कोई परवाह नहीं की गयी। मामले के तथ्यों में आरोपी के 22 वर्ष की आयु होने के अनुकंपा आधार को बिल्कुल भी प्रासंगिक नहीं कहा जा सकता है। विद्वान सत्र न्यायाधीश द्वारा प्रस्तुत किये गये कथन को सत्य ही कहा जा सकता है। विद्वान न्यायाधीश ने मामले पर उसके सभी पहलुओं से विचार किया है और संहिता की धारा 235 (2) या 354 (3) के तहत कोई कमी नहीं है

और इस प्रकार हम श्री मुरलीधर की दलीलों के साथ अपनी सहमति दर्ज करने की स्थिति में नहीं हैं।

वर्तमान मामले में, अपराध की क्रूर प्रकृति ने हमारी न्यायिक चेतना को झकझोर कर रख दिया है। यह हत्या बिना किसी उकसावे के नृशंस थी। यह निश्चित रूप से इसे दुर्लभतम मामलों में से एक बनाता है जिसमें कोई निवारण या शमन करने वाली परिस्थितियाँ नहीं होती हैं। धनंजय चटर्जी उर्फ धाना बनाम पश्चिम बंगाल राज्य, [1994] 2 एससीसी 220 में इस न्यायालय की टिप्पणियाँ, मौत की सजा की पुष्टि करते समय हममें से एक (सीजेआई, क्योंकि वह तब एक पक्ष थे) ने मौत की सजा की पुष्टि करते समय ऊपर व्यक्त विचारों से सहमति व्यक्त की थी। इस न्यायालय ने राय दी:

“हमारी राय में, किसी दिए गए मामले में सजा का माप अपराध की क्रूरता पर निर्भर होना चाहिए; अपराधी का आचरण और पीड़िता की रक्षाहीन और असुरक्षित स्थिति होनी चाहिए। उचित सजा का अधिरोपण वह तरीका है, जिससे अदालतें अपराधियों के खिलाफ न्याय के लिए समाज की पुकार का जवाब देती हैं। न्याय की मांग है कि अदालतों को अपराध के अनुरूप सजा देनी चाहिए ताकि अदालतें अपराध के प्रति सार्वजनिक घृणा दर्शा सकें। उचित सजा देने पर विचार करते समय अदालत को न केवल अपराधी के अधिकारों को बल्कि

अपराध के पीडित और बड़े पैमाने पर समाज के अधिकारों को भी ध्यान में रखना चाहिए”

उपरोक्त चर्चा के कारण, हमें नहीं लगता कि न्याय संबंधी कोई गलती हुई है और हम उच्च न्यायालय की टिप्पणियों और निष्कर्षों के साथ अपनी सहमति दर्ज करते हैं।

इसलिए, हमें सत्र न्यायाधीश द्वारा दी गई सजा और उच्च न्यायालय द्वारा पुष्टि की गई सजा में कोई खामी नहीं मिली। अतः यह अपील विफल हो जाती है और खारिज की जाती है।

एम.पी.

अपील खारिज

यह अनुवाद औटिफिशियल इंटेलिजेंस टूल 'सुवास' की सहायता से अनुवादक न्यायिक अधिकारी सुश्री पारूल पारीक (और.जे.एस.) द्वारा किया गया है।

अस्वीकरण: यह निर्णय पक्षकार को उसकी भाषा में समझाने के सीमित उपयोग के लिए स्थानीय भाषा में अनुवादित किया गया है और किसी अन्य उद्देश्य के लिए इसका उपयोग नहीं किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और आधिकारिक उद्देश्यों के लिए, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण ही प्रामाणिक होगा और निष्पादन और कार्यान्वयन के उद्देश्य से भी अंग्रेजी संस्करण ही मान्य होगा।